ट्रेजडी आफ़ कर्बला

–जी0 सी0 सेमुएल

हज़रत अली[अ0] इस्लामी जम्हूरी निज़ामे हुकूमत, (जन तांत्रिक इस्लामी शासन व्यवस्था) के आख़िरी ताजदार (शासक) थे। उनके ज़मान–ए–सल्तनत, (सत्ता काल) से पहले ''बनी–उमइया'' का गुट जिसको बनी हाशिम (हज़रत अली का वंश) से मौरूसी खानदानी अदावत, (वंशीय शत्रुता) थी। पस्ती के बाद उरूज और कमज़ोरी के बाद मुकम्मल कूवत व ताक़त हासिल कर चुका था यानी पतन के बाद उत्थान को पहुंच गया था और निर्बलता के बाद पूर्णतया शक्तिशाली एवं बलशली हो चुका था। यही वह गुट था जिसके हाथों रूहानियते इस्लाम, (इस्लाम की आध्यात्मिकता) अपनी ऊंची सतह से नीचे गिर गयी।

अली[अ0] के दौरे हुकूमत, (शासन काल) में इस गुट के सिरमौर अमीर मुआविया ने जो उस समय दमिश्क में गवर्नर के रूप में शासन चला रहे थे, अपने स्वाधीनता संघर्ष की शुरूआत की। वह अली[अ0] की मातहती, (अधीनस्था) में नहीं रहना चाहते थे। ''सिफ़्फ़ीन की जंग'' इस सिलसिले की एक कड़ी थी जो अली[अ0] को शाम के अमीर यानी प्रशासक से लड़ना पड़ी जिनकी पूरी कोशिश यह थी कि वह अली[अ0] की राज–सत्ता को कमज़ोर कर दें। चुनान्चे वह इस मक़सद (उद्देश्य) में कामयाब हो गये। अली[अ0] के बाद उनके बड़े बेटे हज़रत हसन[अ0] ने ज़मामे हुकूमत अपने हाथों में पकड़ी प्रशासन की बाग डोर संभाली मगर छः महीने से ज़्यादा हुकूमत न कर सके। और अमीर मुआविया से उनको सन्धि करनी पड़ी मगर उस सन्धि की शर्ते शाम के प्रशासक की तरफ़ से पूरी नहीं की गयी।

अमीर मुआविया के मर जाने पर उनका बेटा यजीद गद्दी पर बैठा। इस शख़्स का वजूद, (इस व्यक्ति का अस्तित्व) इन्सानियत (मानवता) के दामन पर एक बदनुमा धब्बा था। हज़रत मोहम्मद[स0] रूहानी ख़िलाफ़त और दीने इस्लाम की लायक़े तक़लीद हुकूमत से इस शख़्स का दूर का भी तअल्लुक न था यानी हज़रत मोहम्मद[स0] के आध्यात्मिक उत्तराधिकार एवं इस्लाम धर्म के अनुकरणीय प्रशासन से इस व्यक्ति का दूर का भी रिश्ता–नाता न था।

यह बड़ा अय्याश, विलासी और आज़ाद मनश यानी निरंकुश आदमी था। उसका ज़्यादातर वक़्त (अधिकतर समय) लहव व लअब (खेल कूद) में बीतता था। खुली बात है कि एक सदाचारी, नेककार इन्सान को ऐसे दुराचारी व्यक्ति से कोई दिलचस्पी व मोहब्बत, लगाव एवं प्रेम नहीं हो सकता। और उसकी सत्ता बनी नौए इन्सान यानी मानव जाति के लिए एक अज़ाब यानी यातना का दर्जा रखती है।

हुसैन[अ0] इब्ने अली[अ0], हज़रत मोहम्मद[स0] के नाती थे और नेक किरदारी और हक़ परस्ती में

यानी सदाचारिता और सत्य–वादिता में सारे मुसलमानों के आध्यात्मिक गुरू, (रूहानी पेशवा) माने जाते थे। हज़रत पैग़म्बर[स०] के अकाबिरे तबाईन और पैरो यानी पैग़म्बर[स०] के बड़े अनुयायी जिनको ''असहाब'' कहा जाता है, हुसैन[अ०] का एहतेराम (मान–सम्मान) पेश–ए–नज़र (दृष्टिगत) रखते थे।

हुसैन[अ०] मरंजा मरंज अर्थात ''न दुखी करो न दुखी हो'' के सिद्धान्त पर जीवन बसर करने वालों में थे। उनका बेहतरीन मशग़ला विशिष्ट रूचि माबूदे बरहक़ सच्चे उपास्य ईश्वर को आराधना, इबादत और उसकी मखलूक़ यानी सृष्टि की खिदमत करना, सेवा करना था।

यज़ीद ने जन साधारण की तरह आपसे भी अपनी बैअत व इताअत की ख्वास्तगारी की यानी अपनी बैअत और आज्ञा पालन की मांग की। बैअत के मानी ''इस्लामी इस्तिलाह'', परिभाषा में यह हैं ''बैअत स्वीकार करने वाला स्वयं को अपने सारे धार्मिक और संसारिक कार्यों में उसका आज्ञाकारी बना देता है जिस आदमी की वह बैअत कर लेता है'' यह बिल्कुल साफ़ बात है कि हुसैन[अ०] जैसा धर्मात्मा, यज़ीद जैसे नाकारा आदमी की आज्ञापालन का बन्धन अपने गले में नहीं डाल सकता था। चुनान्चे जब आपसे बैअत की मांग हुई तो आपने साफ़–साफ़ अल्फ़ाज़ (स्पष्ट शब्दों) मे इन्कार कर दिया। मैं कहुंगा कि उनका ऐसा ही करना ज़रूरी था वरना वह हुसैन[अ०], हुसैन[अ०] न रहते बल्कि यज़ीद के एक मामूली गुलाम बनके रह जाते।

करबला की घटना की यह नीव थी। हुसैन[अ०] के इन्कार पर यज़ीद को बहुत गुस्सा आया और वह उनके क़त्ल का ख्वाहिश्मन्द, (इच्छुक) हो गया। वह अच्छी तरह जानता था कि गर वजूदे हुसैन[अ०] यानी हुसैन[अ०] का अस्तित्व दुनिया में बाक़ी रहा तो मेरी बदकिरदारी (मेरा दुराचरण) जगज़ाहिर हुए बिना न रह सकेगा। और मुसलमानों में मुझसे ऐसा तनफ्फुर रूनुमा होगा यानी ऐसी घृणा पैदा होगी कि वह मुझे पलभर के लिए भी अपना हाकिम बना रहना गवारा न करेंगे।

हुसैन[अ०] को जब मालूम हुआ कि यज़ीद उनको क़त्ल कराने का इरादा रखता है तो वह अपने कुन्बे को लेकर जिनमें औरतें और बच्चे भी थे, अपने वतन मदीने से रवाना होकर मक्का पहुंच गये। जहां मुसलमानों की सबसे अज़ीम इबादतगाह (महानतम पूजा स्थली) ''काबा'' है। मगर यहां भी शान्ति अमन उन्हें दिखाई नहीं पड़ा। क्योंकि मक्का भी यज़ीद की हुकूमत, (राज) में था। आख़िर वहां से भी मंज़िल ब मंज़िल कूच करके, पड़ाव दर पड़ाव चलकर करबला तक पहुंच गये।

कूफ़े के नज़दीक एक वीरान रेगिस्तान, उजाड़ मरूस्थल को 'कर्बला कहते हैं। जिसके आस–पास भी कोई बस्ती न थी। यहीं हुसैन[अ०] ठहरे जिसका कारण यह हुआ कि कूफ़ा के प्रशासक इब्ने ज़ियाद ने एक हज़ार आदमियों पर सम्मलित फ़ौज का एक दस्ता इस गरज़ (उद्देश्य) से भेजा था कि वह हुसैन[अ०] को राह में घेर ले और कूफे में उसके पास ले आए। यह सैनिक टुकड़ी हुसैन[अ०] के साथ–साथ चलती रही और कूफ़ा पर जोर देती रही। मगर हुसैन[अ०] कूफ़ा जाने पर तैयार न हुए। यहां तक कि कर्बला पहुंच गये। अब यज़ीद के गवर्नर इब्ने ज़ियाद ने कूफ़े से कर्बला फ़ौजों को भेजना शुरू किया ताकि इस सरज़मीन (भूमि) पर एक फैसला कुन, (निर्णायक) लड़ाई हुसैन[अ०] से हो जाए।

10 मुहर्रम सन् 61 हि0 को करबला में इस हौलनाक (भीषण) लड़ाई की शुरूआत हुई। जिसको ''ट्रजिडी आफ कर्बला'' (कर्बला की त्रासदी) कहते हैं। इमाम हुसैन[अ०] की तरफ़ छोटे बड़े बहत्तर नुफ़ूस (72 जीव) थे और दूसरी तरफ़ चालीस हज़ार फ़ौज थी। इस घटना का सबसे

ज़्यादा अलमनाक (शोकपूर्ण) हिस्सा यह है कि यज़ीद की फौज ने लड़ाई के दो दिन पहले से हुसैन[अ०] की फौज वालों पर पानी की रोक लगा दी थी। ''फरात नामक नदी जो हुसैन[अ०] के पड़ाव के नज़दीक ही मौजें मार रही थी, उस पर कड़ा पहरा बिठा दिया था और सचेत कर दिया था कि हुसैन[अ०] के पड़ाव में किसी तरह से भी पानी की एक बूंद न पहुंच सके।

यह युद्ध गर्मी के दिनों में हुआ था। अरब और इराक़ की गर्मी और कठोर ताप की जानकारी किसको नहीं। ऐसे मौसम में लगातार तीन दिन प्यासा रहना इंसानी रूह को कैसी अज़ीयत का बाइस होता है यानी मानव आत्मा के लिए कितना कष्टदायक होता है। इसको भली भांति समझ सकते हैं। ख़ुसूसन, (विशेषकर) ऐसे मासूम, (अबोध) बच्चों के लिए जो ज़्यादा कुवते बर्दाश्त (सहनशक्ति) नहीं रखते। मैं नहीं समझ सकता कि वह लोग कैसे संगदिल, (क्रूर) थे जिन्होंने अपने पैग़म्बर[स०] की आल व औलाद, सन्तान पर ऐसे ज़ोर–जुल्म को जायज़ व रवा रखा था यानी उचित और न्याय संगत जाना था। अगर ऐसे मुक़ाम, (स्थान पर यहूदी और ईसाई, (जो इस्लाम के मुख़ालिफ़, विरोधी हैं) भी होते तो वह भी कमसिन अतफ़ाल, छोटे बच्चों और मुसीबत ज़दह यानी विपत्ति ग्रस्त औरतों की अल अतश अल अतश (हाए प्यास हाए प्यास) की आवाज़ को बर्दाश्त (सहन) न कर सकते।

10 मुहर्रम की सुबह से ही लड़ाई शुरू हुई और अस्र तीसरे पहर तक क़िस्सा तमाम हो चुका। बहत्तर, प्यासी–भूखी जानों को क़त्ल कर देना मुख़ालिफ़, (प्रतिद्वन्दी) की टिड्डी दल फ़ौज के लिए कौन सी बड़ी बात थी। लेकिन इस्लामी तारीख़ की वरक गरदानी और मुतालिआ़ से हम पर वाज़ेह होता है यानी इस्लाम के इतिहास के पन्ने पलटने और अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हुसैन[अ०] का प्रत्येक साथी तीन दिन की भूख–प्यास में ऐसे अन्दाज़ और जांबाज़ यानी ऐसी शैली एवं निर्भीकता से लड़ा कि दुश्मन के होश उड़ गये।

मानव जगत को कर्बला की त्रासदी ने ऐसे अनेक पाठ पढ़ाए हैं यानी आलम–ए–इन्सानी को सानिह–ए–कर्बला ने ऐसे मुतअद्दि सबक़ दिए हैं जिनको न मैं भूल सकता हूं और न कोई इंसाफ परवर न्यायवादी हक़ीक़त शनास सत्यपरिचित इंसान भूल सकता है। हुसैन[अ०] ने दुनिया पर वाज़ेह, (स्पष्ट) कर दिया कि हक़ बातिल से मग़लूब नहीं होता अर्थात् सत्य, असत्य से पराजित नहीं होता। हुसैन[अ०] ने ज़ाहिर कर दिया कि सत्य पर मिटना ही इन्सानियत है। हुसैन[अ०] ने सिखला दिया कि ज़िल्लत (अपमान) की ज़िन्दगी से ग़ैरत (आत्म सम्मान) की मौत बेहतर है (श्रेष्ठ है)। हुसैन[अ०] ने बता दिया कि मज़लूम (अत्याचार पीड़ित) की आहों में इतनी कूवत व ताक़त (क्षमता और शक्ति) होती है कि ज़बरदस्त से ज़बरदस्त (प्रबल से प्रबल) हुकूमतों के तख़्ते पलट जाते हैं।

मैं प्रत्येक ''क्रिश्चियन नाइट'' को सीख देता हूं कि वह लड़ाई के मैदान में हुसैन[अ०] की तरह मुस्तक़िल मिज़ाज और साबित क़दम यानी दृढ़ निश्चयी ओर अडिग और मसायब पर साबिर यानी विपत्ती में धैर्यवान बना रहे। मैं सोंचता हूं कि अगर हुसैन[अ०] यज़ीद की बैअत कर लेते तो क्या ख़राबी पैदा हो जाती। यह बड़ा अमीक़ (गहरा) सवाल है। मुम्किन है हुसैन[अ०] यज़ीद की बैअत कर लेने के बाद कूछ दिन और ज़िन्दा रहते मगर उनकी यह ज़िन्दगी मौत से भी बदतर होती। इसलिए कि आपकी ज़िन्दगी का दूसरा नाम ''इस्लाम की मौत'' होता।

जिन लोगों को आपकी सदाक़त व हक़्क़ानियत यानी सच्चाई ओर सत्यवादिता पर भरोसा था वह हुसैन[अ०] के बैअत करते ही यह

(बक़िया पेज नं0 30 पर ....)

(पेज नं. 42 का बक़िया....................)

नतीजा निकालने पर मजबूर हो जाते कि अगर यज़ीद पैग़म्बर[स०] का सच्चा खलीफ़ा (उत्तराधिकारी) न होता तो हुसैन[अ०] जैसा पुनीत इंसान हरगिज़–हरगिज़ उसकी बैअत (कुबूल) स्वीकार न करता। यक़ीनन (निश्चय) ही हुसैन[अ०] ने यज़ीद को अपने से अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) समझा तभी तो उसके सामने सिर–ए–इताअत झुका दिया यानी उसके आज्ञा पालन में नत मस्तक हो गये।

ऐसी हालत में यज़ीद का हर काम आम मुसलमानों के लिए काबिल–ए–पैरवी व तास्सी होता यानी अनुकरणीय होता और फिर इस्लाम अपने हक़ीक़ी मरकज़ व मुक़ाम से बईद हो जाता यानी इस्लाम अपने वास्तविक केन्द्र बिन्दु और स्थान से दूर जा पड़ता। हुसैन[अ०] ने मुसलमानों को गुमराही व जलालत यानी पथभ्रष्ट होने से बचा लिया। खुदा परस्ती (ईश्वर वादिता) पर हुसैन[अ०] का यह सबसे बड़ा एहसान यानी उपकार था। कर्बला की घटना के बाद इब्लीसी और लाहूती किरदार में एक ऐसी हदूद–ए–फ़ासिल तामीर हो गयी यानी आसूरी और ईश्वरवादी आचरण में एक ऐसी सीमा रेखा खिंच गयी जो अब किसी के मिटाने से मिट नहीं सकती।

